शंकराचार्य का अद्वैत वेदांतः एक अवलोकन

सारांश

मानव चिंतन के इतिहास में शंकर का दर्शनअद्वितीय है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। जगत मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म अभिन्न है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। शंकराचार्य ने एक ब्रह्मके ही अद्वैत सत्य माना जाता है। शंकर ने जगत कोव्यावहारिक सत्ता मे ं रखा है। शंकर विश्व को असत्य नहीं मानते। मोक्षकी प्राप्ति विश्व में रहकर ही की जाती है। शंकर कर्म में भी विश्वास करते है। जगत असत्य नहीं क्योंकि इसका आधार ब्रह्म है। जिस प्रकार मिट्टी के घड़े का आधार मिट्टी होनेके कारण घडे को सत्य माना जाता है उसी प्रकार विश्व का आधार ब्रह्म होने के कारण विश्व को असत्य मानना गलत है।

मुख्य शब्द : अद्वैत , केवलाद्वैतवाद, प्रतिभासिक, माया, अध्यास

ज्योत्सना कुमारी
विभागाध्यक्षा,
दर्शनशास्त्र विभाग,
के0बी0 कॉलेज,
बेरमो।

प्रस्तावना

वेदांत के सभी सम्प्रदायों में सब से प्रमुख शंकर का अद्वैत दर्शन माना जाता है। अद्वैत वेदांत को हिन्दू धर्म का सर्वोच्च दर्शन समझा जाता है डॉ0 दासगुप्त का भी इस सम्बन्ध में कहना है ''शंकर के द्वारा प्रतिस्थापित दर्शन का प्रभाव इतना व्यापक है कि जब भी हम वेदांत दर्शन की चर्चा करते हैं तो हमारा तात्पर्य उस दर्शन से होता हे जो शंकर के द्वारा मंडित किया गया है।[1] डॉ0 राधाकृष्णन ने भी शंकर के दर्शन की महत्ता का बखान करते हुए कहा है ''उन का दर्शन सम्पूर्ण रूप में उपस्थित है जिसमें न किसी पूर्व की आवश्यकता है और न अपर की''..... चाहे हम सहमत हो अथवा नहीं उनके मस्तिष्क का प्रकाश हमें प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ता।''[2]

शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का आधार है– उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता।अद्वैतवाद का मूलसिद्धांत है–''ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः''[3] अर्थात ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। जगत मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म अभिन्न है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। शंकराचार्य ने एक ब्रह्म के ही अद्वैत सत्य माना इसलिए उन का अद्वैत केवलाद्वैतवाद के नाम से भी जाना जाता है''।[4] शंकर ने तीन प्रकार के सत्ताओं का वर्णन किया है–प्रतिमासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक। प्रतिभासिक के अन्तर्गत वे विषय आते हैं जो क्षणभर के लिए रहते हैं। ये स्वप्न अथवा भ्रम में आते हैं। इनका खंडन जाग्रत अवस्था के अनुभव से हो जाता है। दूसरी श्रेणी की सत्ता यह विश्व है जो देश–काल तथा कारण कार्य से बद्ध है। पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म है। यह हर दृष्टि से सत्य है। यह त्रिकाल सत्य है। शंकर ने जगत को व्यावहारिक सत्ता में रखा है। जगत् व्यावहारिक दष्टिकोण से पूर्णतः सत्य है। यह प्रतिभासिक जगत की अपेक्षा आधिक सत्य है। पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य है। यह विचार ब्रैडले से मिलता है। क्योंकि ब्रैडले भी विश्व को निरपेक्ष सत्ता का आभास मानते हैं। शंकर विश्व को असत्य नहीं मानते। मोक्ष की प्राप्ति विश्व में रहकर ही की जाती है। शंकर कर्म में भी विश्वास करते हें।कर्म विश्व में रहकर ही किया जाता है। डॉ0 राधाकृष्णन कहते हैं'' जीवनमुक्ति का सिद्धान्त्, मूल्यों की भिन्नता में विश्वास, धर्म ओर अधर्म में विश्वास, मोक्षप्राप्ति की सम्भावना जो विश्व की अनुभूतियों के द्वारा सम्भव है, प्रमाणित करता है कि आभास में भी सत्यता निहित है।[5] जगत असत्य नहीं क्योंकि इसका आधार ब्रह्म है। जिस प्रकार मिट्टी के घड़े का आधार मिट्टी होने के कारण घड़े को सत्य माना जाता है उसी प्रकार विश्व का आधार ब्रह्म होने के कारण विश्व को असत्य मानना गलत है। डॉ0 राधाकृष्णन कहते हैं '' यह जगत निरपेक्ष ब्रह्म नहीं है, यद्यपि उसके उपर आश्रित है। जिसका आधार तो यथार्थ हो किन्तु जो स्वयं यथार्थ न हो उसे यथार्थ का आभास या व्यावहारिक रूप अवश्य कहा जायेगा।''[6]

(6) शंकर के दर्शन में माया के आधार पर विश्व की विविधता की व्याख्या की गई है। माया ब्रह्म की शक्ति है, जिस के आधार पर वह विश्व का नानारूपात्मक रूप उपस्थित करता है। यह रचना उसी प्रकार की है जिस

प्रकार कोई कुशल जादूगर अपने जादू की शक्ति से अनेक प्रकार के खेल दिखाता है और दर्शकों को भ्रम में डाल देता है किन्तु वह स्वयं अप्रभावित रहता है। ईश्वर के लिये वह केवल 'लीला' की इच्छा है। ईश्वर स्वयं उस माया से मुग्ध नहीं होता।''[7]

शंकर के माया और सांख्य के प्रकृति में काफी समानता है। शंकर के माया की तरह सांख्य प्रकृति को नानारूपात्मक जगत का आधार मानती है। माया और प्रकृति दोनों में सत्व, रजस और तमस गुण हैं। अर्थात दोनों त्रिगुणात्मक है। माया और प्रकृति दोनों अचेतन है। दोनों मोक्षप्राप्ति में बाधक है पर सांख्य के प्रकृति और शंकर के माया में काफी अंतर भी है। प्रकृति स्वतंत्र है जबकि माया परतंत्र है यह ब्रह्म के अधीन है। प्रकृति यथार्थ है जबकि माया अयथार्थ है।

शंकर के पूर्ववर्ती दार्शनिकों ने माया शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। वैदिक साहित्य में माया शब्द का प्रयोग भ्रान्ति के अर्थ में देखा गया है। वेद में कहा गया ''इन्द्रोमायामिः पुरूरूप इयते'' अर्थात् इन्द्र ने माया द्वारा नाना रूप धारण किये। श्वेताश्वेतर उपनिषद में कहा गया, ''माया तु प्रकृति विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।'' अर्थात माया के प्रकृति समझो और माया के शासक को महेश्वर जानो। बौद्धों ने भी मायावाद का उपयोग किया किन्तु इन के सिद्धांत में यह विज्ञानवाद (Idealism) में परिवर्तित हो गया।

माया के दो रूप या कार्य है– आवरण और विक्षेप। आवरण माया का निषेधात्मक कार्य है। यह वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को ढंक लेती है। विक्षेप के अर्न्तगत माया सत्य वस्तु के स्थान पर किसी दूसरी वस्तु को उपस्थित करती है। जो सत्य नहीं बल्कि आभास है। रस्सी में दिखाई देने वाला सांप आवरण है जबकि रस्सी के स्थान पर सांप की प्रतीति विक्षेप है। यह माया का भावात्मक रूप है।

शंकर ने ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य माना है। ब्रह्म के दो स्वरूप हैं– तटस्थ लक्षण तथा स्वरूप लक्षण। ब्रह्म का स्वरूप लक्षण सच्चिदानंद रूप है। वह सत्य, ज्ञान और अनन्त रूप है। वह अनादि तथा असीम है। ब्रह्म का तटस्थ लक्षण जगत का कारण रूप है। वह जगत का कर्त्ता, पालक तथा संहारक है। ब्रह्म का सम्बन्ध जब माया के साथ होता है तो वह सगुण ब्रह्म अपर ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। मायोपहित ब्रह्म। अर्थात मायायुक्त ब्रह्म ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। ईश्वर व्यवहारिक दृष्टि से सत्य है पारमार्थिक दृष्टि से नहीं। ब्रह्म परब्रह्म है जब कि ईश्वर अपर ब्रह्म है। शंकर ने माया और अविद्या में भेद नहीं किया है। माया औ अध्यास भी अभिन्न है। जिस प्रकार रस्सी में सांप तथा सीपी में चांदी का आरोपण हो जाता है, उसी प्रकार र्निगुण ब्रह्म 2.में जगत अध्यस्त हो जाता है। लेकिन इससे ब्रह्म में किसी प्रकार का विकार नहीं आता या ब्रह्म के स्वरूप के उपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है जबकि जगत खंडित सत्य है। जो सत्य खंडित हो जाय वह परमार्थ सत्य नही होता। जिसे शंकर ने पारमार्थिक सत्य कहा है उसे नागार्जुन ने पारमार्थिक सत्य कहा है। नागार्जुन का परमार्थ सत्य शून्य है जो अनिवार्चनीय है। शंकर का पारमर्थिक सत्य ब्रह्म है जो अनिवर्चनीय है। नागार्जुन ने जगत को व्याघाती मानकर उसे संवृति सत्य की संज्ञा दी है। शंकर ने भी जगत के व्याघाती स्वरूप को देखकर उसे व्यावहारिक सत्ता कहा है। इन समानताओं को देखते हुए आलोचको ने शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहा है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। दोनों में अन्तर है। नागार्जुन जगत को नितान्त असत्य कहते है, जबकि शंकर उसे सदसत् विलक्षण कहते है। जगत सत् नहीं क्योंकि सत् केवल ब्रह्म है। जगत् असत् भी नहीं, क्योंकि असत् वह है जिसका तीनों ही काल में कहीं अस्तित्व ही न हो, जैसे बंध्यापुत्र। पर जगत का वर्तमान में अनुभव होता है। दूसरा बौद्ध दर्शन में माया एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है जो मूलतः जीवाश्रित है, जबकि शंकर का माया ब्रह्माश्रित है।

ब्रह्म से मायाशक्ति के द्वारा जगत का क्रमिक विकास होता है अर्थात् सुक्ष्म से स्थूल की परिगति का आभास होता है। इस विकास क्रम की तीन अवस्थायें होती है –

1. बीजावस्था या अवयक्त कारणावस्था
2. अंकुरावस्था या सूक्ष्म परिणामावस्था
3. वृक्षावस्था या स्थूल परिणामावस्था

ये सभी परिवर्तन या विकास माया के खेल हैं, क्योंकि अपरिणामी ब्रह्म में ये परिणाम या विकार नहीं हो सकते। इस अव्यक्त माया का आश्रय होने के कारण ब्रह्म को सर्वशक्तिमान ओर सर्वज्ञ ईश्वर का नाम दिया जाता है। यह ब्रह्म का वह रूप है जो वास्तविक सृष्टि के पहले अव्यक्त माया के साथ रहता है। जब माया सुक्ष्म रूप से व्यक्त होता है, तब उस का आधार ब्रह्म हिरण्यगर्भ कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है सभी सूक्ष्म विषयों की समष्टि। जब माया स्थूल रूप में अर्थात दृश्यमान विषयों में अभिव्यक्त होती है तब उस का आधार ब्रह्म वैश्वानर या विराट कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है सभी व्यक्त संसार। सगुण ब्रह्म की तीन अवस्थायें तथा उनसे परे–र्निगुण ब्रह्म की अवस्था–कुल चार अवस्थायें ब्रह्म की होती है–

1. परब्रह्म (शुद्ध सत्चित् स्वरूप)
2. ईश्वर,
3. हिरण्यगर्भ
4. वैश्वानर

ये सभी क्रम से जान पड़ती है यथाति ये एक ही साथ सत्य है ऐसा भी माना जा सकता है क्योंकि शुद्ध चैतन्य का कभी लोप नही होता। हिरण्यगर्भ तथा वैश्वानर से अलग ब्रह्म का रूप है जिसे परब्रह्म कहा गया है।

शंकर के दर्शन में आत्मा और ब्रह्म में एक्य माना गया है। आत्मा ही वास्तव में ब्रह्म है। उन्होने आत्मा और ब्रह्म दोनों को सच्चिदानंद (सत्+चित्+आनन्द) कहा है।

उपनिषद के महावाक्य 'तत्वमसि'[10] ;जींज जीवन तजद्ध अहं ब्रह्मास्मि[11] – (I am Brahman) अयमात्मा ब्रह्म[12] अर्थात यह आत्मा ही ब्रह्म है, तत्वमसि श्वेतकेतो[13] अर्थात हे स्वेतकेतु तुम वही हो से भी आत्मा तथा ब्रह्म के अभेद का ज्ञान होता है। जिस प्रकार अग्नि से निकली 3.
हुई चिनगारियां अग्नि से अभिन्न है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म से अभिन्न है। जब ब्रह्म का अविधा से सम्बन्ध होता है तब वह जीव हो जाता है। जीव और ईश्वर दोनों ब्रह्म के विवर्त्त है। ईश्वर और जीव दोनों व्यावहारिक दृष्टि कोण से ही सत्य है। पारमार्थिक दृष्टिकोण से दोनो असत्य है। फिर भी शुद्ध चैतन्य दोनों में पाया जाता है। डॉ0 राधाकृष्णन कहते हैं ''यदि ईश्वर ब्रह्म है और यदि जीव भी आध्यत्मिक दृष्टि से ब्रह्म के समान है तो ईश्वर और ब्रह्म के मध्य का भेद बहुत न्यून हो जाता है।''[14]

इन समानताओं के बावजूद दोनों में अन्तर है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अकर्ता, मुक्त, सर्वव्यापी,

कर्मनियम से स्वतंत्र तथा अविद्या से शून्य है जबकि जीव में सभी गुणों का अभाव है। जीव और ईश्वर में व्यावहारिक दृष्टि से भेद अवश्य है किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से दोनों एक है।

आत्मा का निजी स्वरूप नित्य, शुद्ध चैतन्य है। पर अज्ञान के कारण नित्य आत्मा का अनित्य शरीर से सम्बन्ध हो जाता है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप को जान लेती है। अद्वैत वेदांत में मोक्ष की परिभाषा दी जाती है कि अज्ञान की निवृति ही मोक्ष है।[15] जिस प्रकार प्रकाश से अंधकार का नाश होता है उसी तरह अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है। अज्ञान के नाश होते ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यद्यपि प्रारब्ध के कारण उस का शरीर कायम रहता है किन्तु वह संसार के प्रपंचों से दूर रहता है। ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है। प्रारब्ध कर्मो के समाप्त होते ही उस का शरीर छूट जाता है। यह विदेह मुक्ति की अवस्था है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये चार साधनों की आवश्यकता पड़ती है –

1. नित्यानित्य वस्तु विवक–साधक को सर्वप्रथम नित्य (आत्मा) और अनित्य (अनात्म) का भेद ज्ञान होना चाहिए।
2. इहमुतार्थभोग विराग – उसे लौकिक तथा अलौकिक सभी भोगों की कामना का परित्याग कर देना चाहिये।
3. शमदमादिसाधन सम्पत्– साधक को राम (मन का संयम), दम (इन्द्रियों का संयम, श्रृद्धा) (शास्त्र में निष्ठा), समाधान (चित्त को ज्ञान के साधन में लगाना), उपरति (विक्षेपकारी कार्यों से अलग रहना) और तितिक्षां (शीत और उष्ण को सहने की शक्ति) इन छः साधनों से सम्पन्न होना चाहिए।
4. मुमुक्ष्त्व (साधक को मोक्षप्राप्ति के लिये दृढ़संकल्प होना चाहिए)।

इन साधनों के बाद साधक के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से मोक्षप्राप्त करना चाहिये।

1. श्रवण – अर्थात गुरू के उपदेश सुनना
2. मनन– उस पर विचार करना
3. निदिध्यासन–अर्थात उन सत्यों का बार–बार ध्यान करना।

इस ध्यान के बाद वह ब्रह्म और जीव में अभिन्नता का अनुभव करता है और इस तरह वह परमशक्ति तथा परम आनन्द का अनुभव करने लगता है। उसे आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं नजर आता। शंकर के अनुसार आत्मा स्वभावतः मुक्त है। उसे बन्धन की प्रतीती होती है।[16] आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही मोक्ष है। पो0 हिरियन्ना ने शंकर के मोक्ष सम्बन्धी विचार पर प्रकाश डालते हुए कहा है ''शंकर के मतानुसार मोक्ष कोई ऐसी अवस्था नहीं है जिसे प्राप्त करना है, बल्कि आत्मा का स्वरूप ही है, इसलिये साधारण अर्थ में उसकी प्राप्ति के उपाय की बात नहीं की जा सकती । मोक्ष को प्राप्त करने का मतलब वहां जीव को यह समझ लेना हे जो हमेशा से उसका स्वरूप रहा है लेकिन जिसे वह कुछ समय के लिये भूल गया है।''[17]

मोक्ष की अवस्था में व्यक्ति ब्रह्म के सदृश नहीं बल्कि ब्रह्म ही हो जाता है। ''ब्रह्मविद् ब्रहमैव भवति''। जिस प्रकार कुंभ का जल कुंभ के फुट जाने पर जल में मिल जाता है। उसी प्रकार अज्ञान का विनाश हो जाने पर जीव ब्रह्म में मिल जाता है। कबीर के इन पंक्तियों में भी इस अवस्था का वर्णन मिलता है–

''जल में कुंभ है कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तथ कह्यो गियानी।।''

मानव चिंतन के इतिहास में शंकर का दर्शन अद्वितीय है। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा प्रतिपादित शंकर की प्रशंसा में विलमय जेम्स कहते हैं, ''भारतवर्ष का वेदांत् संसार के सभी अद्वेतवादों का शिरोमणि है।'' जेम्स कहते है'' एक अद्वितीय परब्रह्म, और मैं वह परब्रह्म'' यहां एक ऐसा धार्मिक विश्वास उत्पन्न हो जाता है जिसमें मन को संतुष्ट करने की असीम शक्ति है इसमें चिरस्थायी शांति और सुरक्षा का भाव निहित है। हम सभी यह अद्वैतवाद का मधुर संगीत सुन सकते है। इसमे अपूर्व शांतिदायिनी ओर उद्धारकाणिी शक्ति है।''[18]

मेरा ऐसा मानना है जब शंकराचार्य ये कहते है कि ब्रह्म और जीव अभिन्न है तो वास्तव में वे ये कहना चाह रहे है कि सभी जीव में ब्रह्म का वास है और इस दृष्टि से सभी जीवों के प्रति हमारे मन में प्रेम, करूणा, आदर, सहानुभूति दया, सौहार्द का भाव रहना चाहिए। वास्तव में शंकराचार्य का यह विचार आज के समय में ज्यादा प्रासंगिक है, क्योंकि आज लोगों के मन में एक दूसरे के लिये कटुता, ईष्या, घृणा, नफरत, संदेह जैसे बुरे भाव ही भरे है। जब हम यह मानेगें कि हम सभी में एक ही ईश्वर का बास है, तभी सभी के साथ प्रेम के साथ रहना संभव होगा। सभी को सम्मान दें, एक दूसरे की सहायता करें, किसी के लिये नफरत, धृणा न हो तभी वास्तव में मनुष्य मनुष्य कहलाने के लायक होगा और यह विश्व मनुष्यों के रहने की जगह होगी।

सन्दर्भ

1. एस.एन. दासगुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग–1 पृष्ठ 428
2. Indian Philosephy, Vol. II P. 446.447
3. ब्रह्म ज्ञानवली भाग्य जगतगुरू शंकराचार्य, 20 ,उद्घृत, पो0 संगमलाल पाण्डेय (2002)
   भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, पृष्ठ–281
4. वीणा झा, शंकर का अद्वैत वेदांत, पृष्ठ–10
5. Dr. RadhaKrishna, Indian Philosophy] Voll-II P. 582
6. Dr. RadhaKrishnan, Indian Philosphy, Vol-IIpP. 584
7. ब्रह्मसूत्र, 2/1/9 पर शंकर भाग्य।
8. ऋग्वेद 6/44/18
9. भारतीय दर्शन : चट्टोपध्याय एवं दत्त, च्प 250
10. छान्दोग्य उपनिषद 6/2/2
11. वृहदारण्यक उपनिषद 1/5/10
12. वृहदारण्यक उपनिषद 2/5/19
13. छान्दोग्य उपनिषद 6/2/7
14. Dr. Radha Krishnan, Indian Phislosphy Vol-II. P-708
15. आत्मनि एवाविद्यानिवृति : मुण्डक उपनिषद, शंकर भाग्य
16. भारतीय दर्शन की रूपरेखा – प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिंह P.-315
17. Prof. Hiriyana : outlines of Indian Philosophy P.-378
18. William James Pragmatism P-151-4